संग्रह एवं विसर्जन

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

संग्रह और विसर्जन से संतुलन बना रहता है। संग्रह का अर्थ है चारों तरफ से वस्तुओं को इकट्ठा करना। विसर्जन का अर्थ है त्याग। अधिक संग्रह करना हानिकारक होता है। शरीर को संतुलित करने के लिए अनेक तत्वों की आवश्यकता होती है। आवश्यकता से अधिक संग्रह हो जाने पर असंतुलन पैदा हो जाता है। संग्रह और आवश्यकता दोनों अलग–अलग हैं। आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्य संग्रह करता है। छोटी–छोटी बचत के माध्यम से मानव अपने बुरे दिनों के लिए अपनी कमाई का कुछ अंश बैंकों और डाकखानों में जमा किये रहता है। बूंद–बूंद से भरे सरोवर। थोड़ी–थोड़ी बचत बहुत हो जाती है। जैसे बूंद–बूंद के गिरने से घड़ा भर जाता है वैसे ही थोड़ी–थोड़ी धनराशि इकट्ठा करने से खुब संग्रह हो जाता है। अपनी कमाई से संग्रह करना अच्छा है।

संग्रह करना अच्छी बात है। इससे जीवन में सुख शान्ति मिलती है। लेकिन अतिसंग्रह करना ठीक नहीं है। अतिसंग्रह का अर्थ है लूट, खसोट, अनैतिक माध्यमों और भ्रष्टाचार के द्वारा दूसरे के हक को छीनकर स्वयं का बना लेना। अतिसंग्रह तभी हो सकता है जब हम दूसरों का भी हक छीनकर अपना बना लें। यह कार्य किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। इसलिए अतिसंग्रह की लालसा से बचना चाहिए। मानव की बुनियादी आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा मुख्य है। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति साधारण ढ़ंग से होती रहे तो अतिसंग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह करना मनुष्य के अन्दर लालसा को जन्म देता है। मानव में लालसा क्यों पैदा होती है? मानव में मुख्य रूप से दस संज्ञाएं होती है, उसमें से एक परिग्रह संज्ञा भी है।

गृहस्थी के कार्य का संचालन करने के लिए गृहस्थ को संग्रह करना पड़ता है। लड़के–लड़कियों के विवाह, शिक्षा के लिए यदि पैसा न रहे तो दूसरे के सामने हांथ फैलाना पड़ता है जिससे सामाजिक मान और प्रतिष्ठा में कमी आती है। आवश्यकता से अधिक वस्तु को इकट्ठा करना अतिसंग्रह है। संग्रह अच्छी चीज है। किन्तु संग्रह की लालसा या अतिसंग्रह बुरी चीज है। संग्रह की रक्षा करना बड़ा कष्टप्रद है। यदि मनुष्य आवश्यकता से अधिक संग्रह कर लिया है और उसका स्रोत आयकर विभाग को नहीं बताता और उस पर सरकार को कर नहीं देता तो आयकर विभाग आवश्यकता से अधिक जमा की गई धनराशि का पूरा चिट्ठा खोलता है और ऐसे व्यक्ति को जेल की हवा खानी पड़ती है। संग्रह का हिसाब आयकर विभाग को देना पड़ता है।

यदि आवश्यकता से अधिक धन मनुष्य के पास है तो अभावग्रस्त लोगों को सहायता के लिए इसका उपयोग करना चाहिए। उच्च शिक्षा के लिए जिनके पास धन नहीं है, लेकिन विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता है तो उसे धन उपलब्ध कराकर शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई चिकित्सा के लिए परेशान है तो उसकी सहायता करनी चाहिए। समाज के गरीब लड़के और लड़कियों की शादी में धन खर्च करना चाहिए। ऐसे परोपकार के अनेक कार्य हैं जिनसे धन का सदुपयोग किया जा सकता है। समाज का एक वर्ग संग्रह करता है और एक वर्ग ऐसा हैं जो संग्रह नहीं करता। ऐसे वर्ग में साधु संन्यासी आते हैं। इसीलिए संतों को अनगार कहा जाता हैं। इनके पास किसी भी प्रकार का संग्रह नहीं रहता। इच्छा तो आकाश के समान अनन्त है।

इच्छा की पूर्ति कभी नहीं की जा सकती। इच्छा पर नियन्त्रण अवश्यक किया जा सकता है। इसलिए मनुष्य को आवश्यकता अधिक नहीं बढ़ानी चाहिए। एक परिवार का गुजर–बसर यदि एक मकान से हो जाता है तो अनेक मकान नहीं बनवाने चाहिए। संयम को जीवन में पालना चाहिए। प्रकृति ने मानव को उपभोग के लिये एक अक्षय खजाना दिया है। यदि इसका सदुपयोग किया जाय तो यह समाप्त होने वाला नहीं है, किन्तु यदि इन तत्त्वों का दुरुपयोग किया जाएगा तो समाप्त भी हो जायेगा और मानव के अस्तित्त्व के लिये संकट भी उपस्थित हो जायेगा।

प्रकृति के इस कोश से मानव जितना ग्रहण करे अर्थात् अर्जन करे, उतना देने का अर्थात् विसर्जन का भी प्रयास करे तो लेन–देन में सन्तुलन बना रहेगा और दोनों के अस्तित्व की भी रक्षा होती रहेगी। उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण मनुष्य अपने पुराने आदर्शों और परम्पराओं को भूलकर अर्जन अधिक और विसर्जन कम कर रहा है। प्राकृतिक तत्त्वों का अन्धाधुन्ध दोहन कर रहा है।

आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग मानव के अनैतिक आचरण का परिणाम है। प्राचीन काल की मनोवृत्ति आज की मनोवृत्ति से सर्वथा भिन्न थी। प्राकृतिक उपादानों में अध्यात्मवृत्ति के कारण पर्यावरण विशुद्ध रहता था। पर्यावरण की विशुद्धि प्राणिमात्र के सुखमय और शान्तिमय जीवन के लिये अपेक्षित है। अर्जन मानव की आवश्यकता है बिना अर्जन के जीवनयापन करना संभव नहीं है। किंतु उतना ही अर्जन करना चाहिए जितनी आवश्यकता है। आवश्यकता से अधिक अर्जन दूसरों के हिस्से पर अधिकार करना है।